P.G. 2nd semester

Dr Kumari Manju
H.O.D
Depatt of ECO.

## Growth and pattern of Industrial Development.

अंग्रेजों के आगमन से पहले भारतीय अर्थव्यवस्था औद्योगिक रूप से परिपक्व थी। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में भारत के उद्योगों को तहस-नहस कर दिया और भी मार्ग बना दिया। यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं से अधिक विकसित थी। अंग्रेजों ने अपने शासनकाल में भारत के उद्योगों को तहस-नहस कर दिया और धीरे-धीरे परिणाम यह हुआ कि आजादी के समय भारत को कमजोर औद्योगिक ढांचा ~~तथा पश्चिमी यूरोपीय अर्थव्यवस्थाओं~~ अल्पविकसित आधारिक संरचना तथा गतिहीन अर्थव्यवस्था विरासत में मिली। सरकार ने विद्यमान औद्योगिक क्षमता का भरपूर उपयोग किया जा सके तथा लोगों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक विकास किया जा सके। 1947 में एक उद्योग सम्मेलन बुलाया ताकि विद्यमान औद्योगिक क्षमता... इस सम्मेलन में प्रबंधकों और मजदूरों के बेहतर सम्बन्ध बनाने के दृष्टिकोण से एक त्रिदलीय समझौता किया गया जिसमें प्रबन्धकों और मजदूरों के बीच तीन वर्ष के लिए शांति का प्रस्ताव रखा गया। इसके अलावा औद्योगिक विकास में सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से सरकार ने 1948-49 के बजट में उद्योगों को कर सम्बन्धी छूट दी और संविधान सभा द्वारा औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना का निर्णय किया। सरकार ने औद्योगिक विकास के सम्बन्ध में अपनी नीति को स्पष्ट करने के उद्देश्य से 1948 में लोकसभा में औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया। 1949 में सरकार ने विदेशी पूँजी के सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट की यह आश्वासन दिया कि उसके साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जायेगा। भारत सरकार के इन सब कोशिशों का औद्योगिक विकास पर अच्छा प्रभाव पड़ा और औद्योगिक उत्पादन के सूचकांक में 1951 की अपेक्षा 14.4 प्रतिशत वृद्धि हुई।

औद्योगिक संवृद्धि के पहले चरण में पहली तीन योजनाओं का काल आता है। महालनोबिस मॉडल पर आधारित दूसरी योजना में पूँजीगत वस्तु उद्योगों तथा मूलभूत उद्योगों के विकास पर विशेष जोर दिया गया। यही कारण है कि लोहा व इस्पात, भारी इंजीनियरिंग तथा मशीन निर्माण उद्योगों में भारी निवेश किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में भी निवेश का यही पैटर्न रखा गया।

दूसरे चरण में औद्योगिक संवृद्धि (1965-80) 1965 से 1980 दशकों में गिरावट आई। इस की अवधि में पूँजीगत वस्तु उद्योगों की संवृद्धि दर में गिरावट आई। इस अवधि में संरचनात्मक प्रतिगमन हुआ था। इसी संरचनात्मक प्रतिगमन के एक अन्य पहलू पर भी शेट्टी ने प्रकाश डाला है। उन्होंने यह तर्क दिया है कि जिन उद्योगों में संवृद्धि दर तेज थी उनमें से अधिकतर उद्योग ऐसे थे जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष तौर पर उच्च आय वर्गों के लिए विलासिता की उपभोग वस्तुओं का उत्पादन करते थे। उदाहरण के लिए बेहतर किस्म के कपड़े, मदिरा, परफ्यूम व कास्मेटिक्स, घरेलू प्रयोग व ऑफिस में प्रयोग के लिए बढ़िया किस्म के फर्नीचर व अन्य वस्तुओं तथा गाड़ियों व इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं इत्यादि का तेजी से बढ़ता हुआ उत्पादन इस बात को सिद्ध करते हैं कि उत्पादन का ढाँचा ऊँचा आय वर्गों की उपभोग वस्तुओं की माँग को पूरा करने में जुटा हुआ था।

मंदी व संरचनात्मक प्रतिगमन के कारण (Causes of Deceleration and Structural Retrogression): 1965 से 1980 के बीच औद्योगिक क्षेत्र में जो मंदी व संरचनात्मक प्रतिगमन की स्थिति देखने को मिली उसके लिए विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग कारकों को जिम्मेवार ठहराया है। सरकार ने इस स्थिति के लिए बहिर्जात कारकों जैसे - 1965 व 1971 के युद्ध, कुछ वर्षों में सूखे की स्थिति, आधारिक संरचना...

का अत्यधिक विस्तार तथा 1973 के तेल संकट को जिम्मेदार ठहराया के.एन. राज ने तर्क दिया कि कृषि क्षेत्र पर कम विकास औद्योगिक क्षेत्र की असंतोषजनक प्रगति के लिए उत्तरदायी था। कृषि क्षेत्र में अपर्याप्त संवृद्धि होने के कारण जहाँ एक ओर कच्चे माल की आपूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है वहाँ दूसरी ओर औद्योगिक वस्तुओं के लिए माँग सीमित रहती है। टी. एन. श्रीनिवासन एवं एन. एस. एस. नारायण के अनुसार दूसरे चरण में वास्तविक निवेश में शिथिलता आई और इसका औद्योगिक क्षेत्र की संवृद्धि दर पर बुरा असर पड़ा। पी. पटनायक और एस. के. राव के अनुसार, दूसरे चरण में दो बातें साथ-साथ हुई - एक तो सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश कम हुआ और दूसरे निजी क्षेत्र में निवेश के लिए प्रोत्साहन कम हुआ। इस तर्क मूल आधार यह है कि सार्वजनिक क्षेत्र में निवेश में कमी निजी क्षेत्र के निवेश पर भी बुरा प्रभाव डालती है। दीपक नैयर, के. एन. राज, सी. रंगराजन जैसे कुछ अर्थशास्त्रियों ने आय वितरण, माँग और औद्योगिक संवृद्धि के बीच संबन्ध की ओर ध्यान आकर्षित किया है इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, आय की अत्यधिक असमानताओं के कारण भारत में औद्योगिक वस्तुओं की माँग केवल सबसे धनी 10 प्रतिशत वर्ग तक ही सीमित है। एक बार जब इस वर्ग की माँग पूरी हो जाती है तो फिर माँग में और विस्तार की संभावना नहीं है। एक बार जब उपभोक्ता वस्तुओं की माँग पूरी हो जाती है तो इनके भविष्य में और उत्पादन पर बुरा असर पड़ता है। इसके परिणाम स्वरूप, उत्पादन के आगे के चरणों में मशीनों और पूँजीगत वस्तुओं की माँग कम हो जाती है। कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे जगदीश भगवती, पद्मा देसाई, टी. एन. श्रीनिवासन तथा आहलूवालिया ने औद्योगिक मंदी के लिए गलत औद्योगिक नीतियों, लाइसेंसिंग की जटिल नौकरशाही व्यवस्था, तथा नियंत्रणों व प्रतिबंधों के अविवेकपूर्ण ढाँचे को जिम्मेदार ठहराया।

1980 के दशक में औद्योगिक पुनरुत्थान की इस प्रवृत्ति की ओर अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी ध्यान आकर्षित किया है। 1991 में प्रकाशित अपने एक अध्ययन में ईशर जज अहलूवालिया ने यह पाया कि ~~इस प्रवृत्ति की और अन्य अर्थशास्त्रियों ने भी ध्यान आकर्षित किया है 1991 में प्रकाशित अपने~~ 1980-81 के बीच "विनिर्माण क्षेत्र और उस क्षेत्र के सभी उद्योग वर्गों के वर्धित मूल्य (value added) की संवृद्धि में काफी तेजी आई है" जहाँ 1966-67 से 1979-80 के बीच विनिर्माण क्षेत्र में वर्धित मूल्य में केवल 4.7 से 5 प्रतिशत प्रतिवर्ष की वृद्धि हुई वहाँ 1990 के दशक के पूर्वार्द्ध में संवृद्धि की यह दर 7.5 प्रतिशत प्रतिवर्ष तक पहुँच गयी। आहलूवालिया के अनुसार 1980 के दशक में औद्योगिक पुनरुत्थान की जो प्रवृत्ति दिखाई देती है उसकी प्रमुख विशेषता यह है कि वह बेहतर उत्पादकता का परिणाम थी।

औद्योगिक पुनरुत्थान के कारण :

(1) नई औद्योगिक नीति और उदार राजकोषीय व्यवस्था : 1980 के दशक में औद्योगिक पुनरुत्थान का एक प्रमुख कारण सरकार की औद्योगिक व व्यापार नीतियों में किए गए परिवर्तन थे। प्रमुख परिवर्तन थे - उद्योगों में प्रवेश पर प्रतिबंधों में कमी, नई प्रौद्योगिकी, कच्चे माल व अन्य सामान के आयात को बेहतर व्यवस्था तथा स्थापित क्षमता के उपयोग में लचीलेपन की अनुमति। एक ओर तो इन ~~[illegible]~~ लोगों ने उत्पादन को बढ़ावा दिया ताकि विभिन्न वस्तुओं का उचित उपयोग किया जा सके और दूसरी ओर उनकी माँग को पूरा किया जा सके। इन सब कारकों को उदार व्यापार नीति पर्याप्त रूप से कार्य कर रहे थे। इन उदार राजकोषीय व्यवस्थाओं राजकोषीय व्यवस्था से सहायता मिली।

मुख्य: तत्व थे: (i) जमा पर ब्याज दर में वृद्धि आई (ii) ऊँची ब्याज दरों पर आसानिक ऋण लेना, तथा (iii) निर्यात में वृद्धि। उदार राजकोषीय नीति इन सब पहलुओं से अर्थव्यवस्था में विनिर्मित वस्तुओं की मांग में वृद्धि हुई।

(2) **कृषि क्षेत्र का योगदान**: कुछ अर्थशास्त्रियों के अनुसार देश के कुछ क्षेत्रों में बड़े किसानों की आय में तेज वृद्धि हुई है इससे विनिर्मित वस्तुओं की मांग बढ़ी है। आर. नागराजन के अनुसार गैर-कृषि वस्तुओं के लिए ग्रामीण क्षेत्र की मांग 1967-68 में 35 प्रतिशत से बढ़कर 1983 में 43 प्रतिशत हो गई। इसके अलावा कृषि उत्पादन में अधिक औद्योगिक सामग्री का प्रयोग होने लगा है।

(3) **सेवा क्षेत्र का बढ़ता व्यय**: दिलीप स्वामी के अनुसार 1980 के दशक में सरकारी व्यय में काफी वृद्धि हुई। यह बात सार्वजनिक तथा सार्वजनिक प्रशासन पर सरकारी व्यय में कार्यरत कर्मचारियों की वास्तविक स्पष्ट हो जाता है कि इन सेवाओं में ... की गति से बढ़ी आय थी। 1975-80 के दौरान प्रति वर्ष 500 करोड़ रुपये की वृद्धि हुई यह बढ़कर 1982-83 के दौरान 1,000 करोड़ रु. की वृद्धि हुई यह बढ़ रही थी, उसने 1982-83 के दौरान ... उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं की मांग ऐसा उपभोक्ता वर्ग है जिसकी मांग में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं का ... इसी मांग के परिणामस्वरूप महत्व होता है दिलीप स्वामी के अनुसार इसी मांग के परिणामस्वरूप 1980 के दशक में औद्योगिक पुनरुत्थान में उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(4) **आधारिक संरचना का योगदान**: 1980 के दशक में ~~आधारिक~~ आधारिक संरचना में निवेश में काफी वृद्धि हुई। 1975-76 के बीच आधारिक संरचना में निवेश ... 1979-80 से 1984-85 की वृद्धि मात्र 4.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष थी जो 1985-86 में आधारिक के बीच बढ़कर 9.7 प्रतिशत प्रति वर्ष हो गई। 1985-86 में 18.3 प्रतिशत और संरचना में निवेश 16.0 प्रतिशत तथा 1986-87 में 18.3 प्रतिशत और ... बढ़ गया अहलूवालिया के अनुसार 1980 के दशक में आधारिक संरचना में निवेश में वृद्धि के साथ-साथ दक्षता (efficiency) में भी बहुत सुधार हुआ।

उदारीकरण और औद्योगिक संवृद्धि (Liberalisation and Industrial Growth): 1991 से आर्थिक उदारीकरण के नए युग की शुरुआत हुई। औद्योगिक क्षेत्र के निष्पादन को प्रभावित करने वाली नई उदारीकृत नीतियां थीं - औद्योगिक नीति में व्यापक उदारीकरण, लाईसेंसिंग से अधिकतर उद्योगों की मुक्ति, कार्यकारी नियमों व नियंत्रणों में सरलीकरण, सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित उद्योगों में कमी तथा निजी क्षेत्र के लिए अधिकतर उद्योगों के द्वार खोलना, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों में विनिवेश, घरेलू औद्योगिक क्षेत्र में विदेशी भागीदारी को बढ़ावा, आयात व विनिमय दर नीतियों में उदारीकरण, सीमा शुल्कों, उत्पाद शुल्कों, आयकर तथा निगम कर की दरों में कमी, इत्यादि। ~~पिछले कुछ समय से अर्थशास्त्रियों के बीच बहस का मुद्दा यह है कि उदारीकरण की इन नीतियों का औद्योगिक क्षेत्र के निष्पादन पर क्या असर पड़ा है।~~

**1990 का दशक**: आठवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन की

(1) वार्षिक संवृद्धि दर 7.4 प्रतिशत थी जो लक्षित संवृद्धि दर के बराबर थी। इस लिए इस योजना में प्रगति संतोषजनक मानी जा सकती है।

(2) नौवीं योजना में औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर केवल 5.0 प्रतिशत प्रति वर्ष थी जो 8.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष के लक्ष्य से काफी कम थी। इस प्रकार 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में औद्योगिक क्षेत्र का निष्पादन अत्यंत असंतोषजनक था।

Scanned with CamScanner

(3) नौवीं योजना के अंतिम वर्ष 2001-02 में औद्योगिक क्षेत्र का निष्पादन बहुत असंतोषजनक था क्योंकि इस वर्ष औद्योगिक उत्पादन में मात्र 2.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई। यह 1992-93 से 2001-02 के दशक में सबसे खराब निष्पादन था।

(4) सुधार अवधि में औद्योगिक निष्पादन में काफी उतार-चढ़ाव से अर्जित औद्योगिक विकास सतत रूप से नहीं हुआ। उदाहरण के लिए औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर जो 1992-93 में थी केवल 2.3 प्रतिशत थी, 1993-94 में बढ़कर 6.0 प्रतिशत तथा 1995-96 में 13.0 प्रतिशत तक पहुँच गई। परन्तु अगले ही वर्ष औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर 6.1 प्रतिशत हो गयी। 2001-02 में तो संवृद्धि की दर मात्र 2.5 प्रतिशत रह गयी। उद्योग क्षेत्र के विभिन्न उपक्षेत्रों - पूँजीगत वस्तु उद्योग, मध्यवर्ती वस्तु उद्योग तथा उपभोक्ता वस्तु उद्योग - सभी विभिन्न वर्षों में व्यापक उतार-चढ़ाव हुए।

1990 के दशक में असंतोषजनक औद्योगिक निष्पादन के कारण : 1990 के दशक में असंतोषजनक औद्योगिक निष्पादन के कारण - 1990 के दशक में असंतोषजनक औद्योगिक प्रगति के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं।

(1) विदेशी प्रतिस्पर्धा (Exposure to external Competition) - योजना आयोग के अनुसार सातवीं योजना की तुलना में आठवीं योजना में कम औद्योगिक संवृद्धि दर का मुख्य कारण यह है कि 1991 से पहले चार दशकों तक औद्योगिक क्षेत्र आंतरिक व बाह्य सभी प्रकार की प्रतिस्पर्धा से सुरक्षित रहा परन्तु 1991 के बाद आयातों के उदारीकरण की नीति के कारण तथा आयात शुल्कों में तेज कटौती के कारण, उसे सहसा विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा। देश की औद्योगिक इकाईयाँ इस अचानक 'हमले' के लिए तैयार नहीं थीं। इसलिए उनकी प्रगति पर विदेशी प्रतिस्पर्धा का बुरा असर पड़ा। विदेशी प्रतिस्पर्धा का रूप में सबसे बुरा असर पूँजीगत वस्तु उद्योग पर पड़ा। इसका प्रमुख कारण तो यह था कि अब इन वस्तुओं का उपयोग करने वाले उद्योगों के लिए आयात का रास्ता खुल गया था और वे देशीय पूँजीगत वस्तु उद्योग से मशीनों व उपकरणों को खरीदने के स्थान पर अत्याधुनिक मशीनों व उपकरणों का आयात करने लगे थे।

(2) निवेश में कमी (Slowdown in investment) - 1990 के दशक में औद्योगिक संवृद्धि दर में गिरावट का एक कारण निवेश में कमी होना भी रहा है। यह सब जाना माना तथ्य है कि सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में पूँजी निर्माण औद्योगिक विकास की गति को तेज करने में सहायक होता है परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने भारत सरकार को 1991 में जो 'स्थायीकरण-आर्थिक समायोजन' कार्यक्रम अपनाने को विवश किया उसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक व्यय में भारी कटौती करनी पड़ी।

(3) विकास के लिए साधन जुटाने में कठिनाईयाँ - औद्योगिक विकास के लिए पूँजी बाजार का विकास आवश्यक है क्योंकि ऐसा होने पर निजी क्षेत्र के उद्यमी अपने उद्योगों के विकास के लिए धन साधन जुटाने में सफल नहीं हो पायेंगे। 1991 के बाद की अवधि में शेयर बाजार में दो बार घोटाले हुए - पहला 1992 में और दूसरा मार्च-अप्रैल 2001 में।

(4) निर्यातों में शिथिलता - 1991 के बाद कई वर्षों में निर्यातों में बहुत कम वृद्धि हुई है। इसके लिए बहुत से कारण जैसे अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा, घरेलू उद्योगों की अधिक उत्पादन लागतें, वस्तुओं की गुणात्मक स्तर पर विदेशी वस्तुओं से प्रतिस्पर्धा करने में असमर्थता, समय पर वस्तुएं निर्यात न कर पाना इत्यादि।

(5) प्रशुल्क संरचना में विसंगतियां - नौवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार प्रशुल्क संरचना में विसंगतियां भी जिनके कारण जहाँ देशीय उत्पादकों पर करों व शुल्कों का अत्यधिक भार था वहीं दूसरी ओर कई वस्तुओं का आयात बिना आयात शुल्क के करने की छूट थी।

(6) उपभोक्ताओं की माँग में संकुचन - 1990 के दशक में उपभोक्ताओं की माँग में काफी संकुचन हुआ। इस संकुचन के मुख्य कारण थे : (i) 1990 के दशक में कृषि क्षेत्र में उतार चढ़ाव होते रहे जिससे ग्रामीण लोगों की क्रय शक्ति पर बुरा असर पड़ा। (ii) भारतीय उद्योगों को न केवल कम ग्रामीण क्रय शक्ति से पैदा होने वाली समस्याओं का सामना करना पड़ा अपितु शहरी क्षेत्रों में भी क्रय शक्ति कम रही। (iii) आय वितरण में बढ़ती हुई असमानताओं के परिणामस्वरूप, तथा रोजगार संवृद्धि में गिरावट के कारण, शहरी जनता के हाथ में वास्तविक क्रय शक्ति कम हो गयी।

Scanned with CamScanner